

## आदिवासी समाज की संस्कृति एवं वैश्वीकरण का प्रभाव

कमलकान्त पटेल समाजशास्त्र विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय

### शोध सारांश

वर्तमान सामाजिक संरचना वैश्वीकरण के दौर से गुजर रही है, जिसने आदिवासी समाज की संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला है, जिससे उनके सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन हुआ है। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया में नगरीकरण, शिक्षा के साथ-साथ आदिवासी समाज की भोजन, पर्यावरण व आवास की आवश्यकताओं में भी व्यापक परिवर्तन देखा जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र इन्हीं विषयों पर केंद्रित होते हुए वैश्वीकरण का आदिवासी समाजों पर पड़े प्रभाव का अध्ययन करता है। प्रस्तुत आलेख मुख्यतः द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है।

आधुनिक समाज परिवर्तनशील दौर से गुजर रहा है। समाज एवं राष्ट्र के विकास के केंद्र में मूलतः व्यक्ति है, जब तक व्यक्ति का व्यक्तित्व निखरकर सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप नहीं हो जाता है, तब तक विकास सर्वांगीण नहीं हो सकता है। विकास प्रक्रिया में नगरीकरण, शिक्षा का अपना स्थान है जो मानव को विकास के लक्ष्य पूरा करने में हित साधक के रूप में कार्य करती है, परंतु यह भी सर्वविदित है कि मानव मात्र के विकास के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का भी उतना ही महत्त्व है जितना भौतिक पक्ष का। विकास की इस यात्रा में दूसरों का विकास बाधित न हो यह ध्यान में रखना होगा, संस्कृतियों का नाश करके विकास नहीं हो सकता है।

आदिवासी प्रकृति के निकट रहने से ये प्रकृति पूजक है। भाषायी दृष्टि से भाषा विज्ञानियों ने भारतीय आदिवासी भाषाओं को मुख्यतः तीन भाषा परिवारों में रखा है- द्रविड़, आस्ट्रिक एवं चीनी तिब्बती। कुछेक आदिवासी भाषाएँ भाषा परिवार से भी साम्य रखती है। भीली, संथाल एवं गोंडी भारतीय आदिवासियों द्वारा बोली जाने वाली प्रमुख भाषाएँ हैं, जिसमें संथाली एवं बोडो को संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान प्राप्त है। आदिवासियों में लोक कथाओं, गीतों, कहावतों और मुहावरों की मौखिक परंपरा समृद्ध रही है, जिसे पुरखा साहित्य का नाम दिया गया है। हिंदुओं के महान धार्मिक ग्रंथ रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि भी कोली जनजाति के आदिवासी थे। जो अपने आप में समृद्ध साहित्य है एवं युग-युगांतर से भारतीय समाज को दिशा दिखाती रही है। सभ्य समाजों में हमें मनुष्य की वर्तमान स्थिति एवं विकास के भौतिक आयामों का पता चलता है, वही आदिम समाज किस प्रकार सरलता से प्रकृति की गोद में नैसर्गिक रूप से जीवनयापन कर अपना समय पूरा करता है यह ज्ञात होता है। शहरी समाज, सभ्यता के मकडजाल में उलझकर अपने नैसर्गिक लक्ष्यों को भूल गया है सामाजिक व्यवहार, रीतिरिवाज एवं भौतिकता में अपने आप को इतना उलझा दिया है कि उसका अपना संतोष कही खो-सा गया प्रतीत होता है।

आधुनिक विश्व में 'वैश्वीकरण' का विचार कई गंभीर खामियों के बावजूद देशों के विकास की अनिवार्य शर्त बनता जा रहा है। आधुनिक विश्व में 'ग्लोबलाइजेशन' अवधारणा का प्रचार वैश्विक कुटुंब के रूप

### मुख्य शब्द

आदिवासी समाज  
वैश्वीकरण  
संस्कृति।

में हुआ है। विश्व के राष्ट्रों की आवश्यकता या स्वार्थ ने आखिरकार औपनिवेशिककालीन शषण काल के पश्चात् विकासशील व गरीब देशों की ओर एक बार पुनः रूख करने को बाध्य किया। जागरूक व समझदार होते विश्व को भी किस प्रकार झांसे में लिया जा सकता है 'वैश्वीकरण' का यह लुभावना 'वैश्विक गाँव' का नारा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। वैश्वीकरण ने मानव के प्रत्येक पहलू को गहराई से प्रभावित किया है। विकसित राष्ट्रों द्वारा स्वार्थपूर्ण उद्देश्य को लक्षित करते हुए स्वयं की अतिरिक्त मात्रा की उत्पादित उपभोक्ता सामग्री के लिए, अछूता रहा विशाल बाजार सुनिश्चित करते हुए इस वैश्वीकरण के अद्भूत विचार ने विश्व के विभिन्न समुदायों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में परिवर्तन के एक नए युग की शुरुआत की, जिसके साथ ही विश्व के सभी राष्ट्रों में परस्पर आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व शैक्षणिक अंतरसंबंधों के नए अध्याय प्रारंभ हुए। इस तंत्र में सभी में स्वार्थपरक नजदीकता स्थापित हुई। इस माहौल में एल.पी.जी. (लिबरलाइजेशन प्राईवेटाईजेशन, ग्लोबलाइजेशन) अवधारणा विस्तारित हुई। वैश्विक विकास के संकेत व प्रतीक इस प्रकार उजागर किए गए हैं कि समाज दिग्भ्रमित होता दिख रहा है। कुछ राष्ट्रों की मजबूरी की आवश्यकताओं को विश्व की आवश्यकता का पर्याय प्रचारित किया गया है।

वैश्वीकरण के सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही पक्ष हैं। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया ने विकासशील देशों में प्रत्यक्ष निवेश, वृद्धि, गुणवत्ता आधारित उपभोक्ता सामग्री का प्रसार, घरेलू उद्योगों व कुटीर उद्योगों को अंतर्राष्ट्रीय पहचान व वैश्विक मंच पर प्राप्ति आदि को बढ़ावा दिया है। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में तेजी से कमी हुई है। नकारात्मक प्रभावों पर विचार करने वाले पूँजीवाद का विकृत चेहरा ही दिखाई देता है। विकसित देशों द्वारा गरीब व विकासशील देशों के क्रय शक्ति संपन्न उपभोक्ता बाजार पर कब्जा करने की लालच, उनका शोषण, दम्पिंग प्रक्रिया में तेजी, स्थानीय लघु व कुटीर उद्योगों का ध्वस्त होना, कृषकों को भूमिहीन करके उनको श्रमिक बनाना, पाश्चात्य संस्कृति की गटिया परंपराओं का परंपरागत समाज में प्रवेश करना। भूमिहास, सामाजिक अपराधों में वृद्धि आदि का तीव्र प्रसार हुआ है।

भारत में जनजाति आबादी को आदिवासी कहा जाता है। इसे भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजाति कहा गया है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 366 (25) के तहत अनुसूचित जनजातियों को संविधान की धारा 342 के अनुसार आने वाली अनुसूचित जनजातियों के समान जनजातियाँ ऐसी जनजातीय श्रेणी को सम्मिलित किया जाता है जो संविधान ऑर्डर 1950 की सूची के आधार पर 744 जनजातियों को इसमें सम्मिलित किया गया है। 2011 की जगणना के अनुसार भारत में 8.6 प्रतिशत जनसंख्या आदिवासियों की है। यह समुदाय मुख्यतया घने वन क्षेत्रों व पहाडी क्षेत्रों में निवास करता है। भारतीय आदिवासी समाज जो अभी आधुनिक समाज को ही समझ नहीं पाया है, वह अभी तक समाज के विकास से वंचित ही है। इस पर एकाएक वैश्वीकरण का बम फूट गया है। यह समाज एक ऐसा निरीह व अविकसित वर्ग है जो राष्ट्र की मुख्य धारा के साथ जुड़ना ही नहीं चाहता है। सरकार के भरसक प्रयासों के बावजूद ये लोग अपनी पारंपरिक जीवन शैली को त्यागने को या आंशिक परिवर्तन करने को तैयार नहीं है और न ही अपने रीति-रिवाजों से समझौता करते हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में उनकी इसी जीवन शैली में हस्तक्षेप किया जा रहा है।

आदिवासियों का जीवन आम लोगों से इस अर्थ में भिन्न है कि वे आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों से पार्थक्य की नीति अपनाते हैं। अर्थात् अपनी भाषा, संस्कृति, परंपराओं को आदिवासी समाज किसी प्रकार से छोड़ना नहीं चाहता है। आधुनिक समाज के लोगों से मिलने भर से ही भयभीत होने वाला यह वर्ग समूल नष्ट होने की आशंका से डर जाता है। ऐतिहासिक रूप से अगर किसी आदिवासी समाज विशेष ने उनको अपने समाज से संबंधित होने का अवसर भी दिया तो उसे अंततः परिणाम के रूप में उसका घोर शोषण ही प्राप्त हुआ है। अतः यह समाज अपनी पहचान को कायम रखना चाहता है। इसके लिए वह किसी भी ऐसे संभावित खतरे से बचाव का एक मात्र उपाय आधुनिक विश्व के विकास से स्वयं को दूर रखने में ही मानता है। अपनी नृजातीय

सांस्कृतिक विशेषताओं को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहते हैं। पारंपरिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विन्यासों को यथावत रखना चाहते हैं।

आदिवासी समाज का आर्थिक ढाँचा अपन मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति को सुनिश्चित करने अर्थात् भोजन, पर्यावरण, आवास तक ही सीमित रहता है। जबकि आधुनिक विश्व की आर्थिक व्यवस्था इससे भी परे जाकर भरपूर अतिरिक्त मात्रा का उत्पादन व उसका संग्रहण करने की ओर प्रवृत्त रहती है। इस व्यवस्था में जहाँ आदिवासी पर्यावरण के साथ रहकर अपना आर्थिक कार्य संपन्न करता है, वहीं आधुनिक समाज प्राकृतिक संसाधनों के दोहन व शोषण के स्तर पर उतर कर अपने आर्थिक विकास को सुनिश्चित करता है। आदिवासी समाज का आर्थिक तंत्र संतोषी भाव पर आधारित होता है। वहीं आधुनिक समाज और अधिक की ओर सदैव प्रयासरत रहता है। वह स्वयं के संसाधनों को दोहन करने के पश्चात् अन्य के संसाधनों पर कुदृष्टि डालने लगता है। प्राकृतिक पर्यावरण से लगाव को प्रदर्शित करने वाला यह वर्ग इन व्यवस्थाओं में लेशमात्र परिमार्जन का परिवर्तन भी नहीं चाहता है।

भारत में औपनिवेशिक शासन की स्थापना एवं सुदृढीकरण के बाद से ही आदिवासियों को राजनीतिक, आर्थिक व प्रशासनिक दृष्टि से शेष भारतीय समाज के साथ जोड़ने की कोशिश की गई। इस प्रक्रिया में न केवल उनका स्वतंत्र व शांतिपूर्ण जीवन भंग हुआ वरन् वे भी कर्ज, बेरोजगारी, गरीबी-शोषण जैसी आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों से ग्रस्त हुए। यहीं से उनकी मानवाधिकारों के हनन की प्रक्रिया भी शुरू हुई। यही दशा राजस्थान के आदिवासी वर्ग के साथ भी हुई है। अंग्रेजी शासन में वन प्रबंधन का उद्देश्य व्यावसायिक था। इसलिए अंग्रेजों का दृष्टिकोण/ध्येय वन क्षेत्रों पर एकाधिकार एवं स्वार्थपरक दोहन था। रेल्वे, औद्योगिकीकरण, बांध निर्माण के लिए जंगल की भूमि ली गई और आदिवासियों को बिना मुआवजे के बेदलख कर दिया गया, क्योंकि उनके पास अभिलेख रूप में कोई मालिकाना हक नहीं था। विकास के नाम पर निर्वाह के लिए आवश्यक अधिकतम प्राकृतिक स्रोतों से वंचित वनवासी का जीवन और अधिक जटिल हो गया है। निरंतर खराब होती आर्थिक स्थिति के कारण आदिवासियों का जीवन स्तर और अधिक नीचे गिर गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति पश्चात् संपूर्ण देश के भू-भाग पर स्वामित्व भारत सरकार का माना गया है। आदिवासियों की इस भूमि पर भी स्वामित्व सरकार का ही हो गया है। तात्कालिक व्यवस्था में उसकी परख करने के बजाय गुलामी के दस्तावेजों को उसी अनुरूप स्वीकार कर लिया। स्वतंत्रता पश्चात् आदिवासी वर्ग के उत्थान का दायित्व केंद्रीय सरकार पर आ गया है। लेकिन विरासत में हजारों वर्षों से शोषित इन समुदायों के जीवन स्तर को कुछ बेहतर कर पाना भी गंभीर चुनौति बन गया। नीति निर्माताओं ने इनके विकास की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। अभी आजाद हुए देश के समक्ष ढेरों चुनौतियाँ विद्यमान हैं। इन चुनौतियों से सामना करने बहुसंख्यक समाजों को संतुष्ट करने में ही देश के संसाधनों का उपयोग प्रारंभ हुआ।

आदिवासी अंचलों प्राकृतिक संसाधनों की जो लूटने की लालसा वैश्वीकरण के इस दौर में मची हुई है, उससे आदिवासी समाज के जीवन को नरकीय बना दिया है। आधारभूत सुविधाओं, मानवाधिकारों, लोकतंत्र में भागीदारी आदि की बातें तो बहुत दूर वरन् इस समुदाय का अस्तित्व ही गहरे संकट में डाल दिया है। वैश्वीकरण के इस युग में आदिवासियों का वनों से प्रतिकात्मक संबंधों पर भी प्रभाव पड़ा है। पारंपरिक दृष्टि से वनों पर आदिवासियों का एक प्रकार से नियंत्रण रहा था। सरकार द्वारा इन वनों व प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन अपने हाथों में लेने से तथा प्रशासनिक ज्यादाती (कानूनी व गैर कानूनी) के कारण इस वर्ग में तनाव बढ़ा है। आज आदिवासियों की मूलभूत समस्याएँ रोटी, कपड़ा, मकान, बेरोजगारी एवं शिक्षा की है तथा संविधान में इन्हें जो अधिकार दिये गए हैं वे भी मूलरूप से लागू नहीं हुए हैं। आज देश में पाँचवी व छठी अनुसूची की मांग की जा रही है जो आदिवासियों के लिए महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में आदिवासियों के लिए संवैधानिक अधिकार है, वह धरातल पर लागू किए जाने चाहिए ताकि संस्कृति, सभ्यता, परंपरा, जल-जंगल-जमीन का संरक्षण किया जा सके। इसी संदर्भ में कहावत है-

तेरा मेरा करते हैं, एक दिन चले जाना है,  
 जो भी कमाया यही रह जाना है।  
 कर ले कुछ अच्छे कर्म,  
 साथ यही तेरे जाना है।  
 रोने से आँसू भी पराये हो जाते हैं,  
 लेकिन मुस्कराने से  
 पराये भी अपने हो जाते हैं।  
 मुझे वो रिश्ते पसंद है,  
 जिनमें “मैं” नहीं “हम” हो।  
 इनसानियत दिल में होती है, हैसियत में नहीं,  
 ऊपरवाला कर्म देखता है, वसीयत नहीं।।

### संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. मीणा, हरिराम. (2014). आदिवासी दुनिया. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
2. श्रीनिवास, एम.एन. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
3. नायडू, पी.आर. (1997). भारत के आदिवासी विकास की समस्याएँ. नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन्स.
4. मेहता, प्रकाशचंद्र. (1993). भारत के आदिवासी. उदयपुर : शिवा पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स.
5. आर्थिक समीक्षा: 2015-16, आर्थिक व सांख्यिकीय निदेशालय, जयपुर।
6. पत्र-पत्रिकाएँ: राजस्थान पत्रिका, दैनिक भास्कर, हंस साहित्य पत्रिका आदि।

### लेखक परिचय

कमलकान्त पटेल

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

